श्रीकृष्णचरितसार।

लेखक—छावनी नीमचस्थ

मांगीलाल गुप्त "कविकिङ्कर"

प्रकाशकः—

मूलचन्द गुप्त

नया बाज़ार, छावनी नीमच

प्रथमावृत्ति १००० | जन्माष्टमी १९७० वि० | मूल्य =)

PRINTED BY

R. S. Dublis at the Bhaskar Press,

Meerut City.

गुरु विरजानन्द दण्डी

1772

31/8/13

262

ओ३म
गुरु विरजानन्द दण्डी
संदर्भ पुस्तकालय
दयानंद महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र
वर्गीकरण नम्बर 1435
पु. परिग्रहण क्रमांक 21

ओ३म

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण क्रमांक ..1435......
...महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

श्रीकृष्णचरितसार

(लेखक मांगीलाल गुप्त "कविकिंकर")

प्रिय पाठकगण ! जो लोग इतिहासज्ञ हैं उनसे अप्रकट नहीं कि चन्द्रवंश में एक राजा "नहुष" नामक हुआ है। और "नहुष" का पुत्र इतिहास-प्रसिद्ध "ययाति" हुआ है कि जिसका "शुक्राचार्य्य" की पुत्री "देवयानि" से विवाह हुआ था। तथा "ययाति" का सब से बड़ा पुत्र "यदु" हुआ है। इसी यदु के वंश में "श्रीकृष्ण" ने जन्म लिया था। हां ऐसी ही अन्धेरी रात्रि, ऐसे ही मेघनाद, ऐसी ही बिजुली की चमक और ऐसी ही घोर वृष्टि में आज से पांच सहस्र वर्ष पूर्व कुटिल कंस राजा की आज्ञा से कारागार में रक्खे हुए-नृप शूरसेन के पुत्र महात्मा वसुदेव के यहां, उनकी रानी देवकी से, अर्द्ध निशा व्यतीत होने पर--हमारे चरित-नायक (श्रीकृष्ण) का जन्म ग्रहण करना अनेक इतिहास लेखक लिख गये हैं। यथाः—

आहुकस्य सुतः श्रीमान् यदुवंशसमुद्भवः।
देवको ज्ञानसिन्धुश्च तस्य कन्या च देवकी ॥ ७ ॥
गर्गो यदुकुलाचार्य्यः सम्बन्धं वसुना सह।
देवक्याः कारयामास विधिवच्च यथोचितम् ॥ ८ ॥
महासम्भृतसम्भारो वसुदेवः शुभक्षणे।
उद्वाहे देवकीं तस्मै देवकः प्रददौ किल ॥ ९ ॥
तां गृहीत्वा रथे कृत्वा प्रस्थानमकरोत् तदा।
कंसः हृष्टः सहचरीभगिन्युद्वाहकर्मणि ॥ १४ ॥
तस्या रथसमीपस्थोऽगच्छत् कंसोऽपि तत्क्षणात्
कंसं सम्बोध्य गगने वाग्बभूवाशरीरिणी ॥ १५ ॥
कथं हृष्टोऽसि राजेन्द्र शृणु सत्यं वचो हितम्।
देवक्या अष्टमोगर्भो मृत्युहेतुस्तवैव हि ॥ १६ ॥
श्रुत्वैवं देवकीं कंसः खड्गहस्तोमहाबलः।
दैववाक्याद्भयात् कोपात् पापिष्ठो हन्तुमुद्यतः॥१७

(ब्रह्मवैवर्त्त० अ० ७)

इसी प्रकार अग्नि पुराण के १२वें अध्याय लिंगपुराण के ६९ वें अध्याय और विष्णुपुराण के पञ्चमांश में भी वर्णन है।

प्रिय पाठक ! योगीश्वर श्रीकृष्ण के जन्म समय न केवल रात्रि जनित अन्धकार किन्तु अज्ञानान्धकार भी बहुत फैला हुआ था। प्रजा-जन अज्ञान के वश-प्रेम का नाम भूले हुए थे भाई-भाई के रक्त का प्यासा हो रहा था, श्रीमान् लोग दीन-आपत्ति ग्रसित पर और भी विपत्ति डालने में ही अपना महत्त्व समझते थे, अधिकारी के अधिकार का विचार कोई विरला ही करता था, माता पिता तक का तिरस्कार करने वाले और भूदेव ब्राह्मणों को तुच्छ समझने वालों की कमी न थी। अपने दीन मित्र का प्रणाम अङ्गीकार करना भी उस समय के लोग अपनी अप्रतिष्ठा समझते थे, तथा प्रतिज्ञा का पूरा करना कितना आवश्यक है, सो वे नहीं जानते थे। वे अज्ञानी अग्नि न छूने

और अक्रिय होने में ही यतित्व समझते थे। निरुद्योग में ही योगसिद्धि उन्हें जान पड़ती थी। क्या क्या कहें? विषय भोग में लिप्त होने से शारीरिक शक्ति और आत्मा को विनाशशील मानने से आत्मिक बल उनका नष्ट हुआ २ था। वे मन्दकर्मी मांस, मद्य और जड़ पूजा में ही संसार भर का बल, आनन्द तथा उपासना—तत्व मानते थे तथा तुच्छ संसारी पदार्थों के संग्रह में ही उनका जीवन व्यतीत होता था। वे लोग अपनी लेशमात्र हानि करने वाले का भी प्राण तक हर लेना बहुत बुरा नहीं समझते थे। परन्तु हमारे श्रीकृष्ण ने अपने अलौकिक आचरण और संभाषण से ऐसे २ कुकार्य्य न करने की शिक्षा दी और हर्ष का विषय है कि इनकी शिक्षालता फलवती भी हुई। न केवल उसी समय उक्त शिक्षालता फलदायिनी हुई वरन् आज तक भी उस शिक्षा से संसार का एक बड़ा भाग सदाचार की ओर झुका हुआ है, और हम विश्वास रखते हैं कि जब तक सूर्य और चन्द्र रहेंगे, तब तक उस शिक्षालता से हम को मिष्ट फल मिलते रहेंगे।

अहा! कैसा उत्तम समय है। आज भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी है। अर्द्धनिशा बीत चुकी है, पूर्वदिशा के एक भाग में चन्द्र और पूर्व देश के एक नगर में हमारे चरित नायक का उदय होने वाला है। एक निशा के तम को हरेगा--तो दूसरा अघासुर को या अज्ञानान्धकार को, एक पृथिवी के गोलार्द्ध-मात्र में ही प्रकाश का प्रसार करेगा—तो दूसरा पृथ्वी के प्रत्येक भाग में, एक का उदय चौराहे को अच्छा मालूम न होगा-तो दूसरे का कंसादिक को, एक का प्रकाश नयन विहीन के लिये निरर्थक होगा—तो दूसरे का कविराज-सूरदास जैसे निपट अन्धों के लिये भी सार्थक होगा, एक उदय के साथ ही प्रतिबिम्ब रूप से जलाशयों में प्रविष्ट होगा—तो दूसरा उत्पन्न होते ही यमुना विहार करेगा और एक भौतिक सूर्य्य का मास में २॥ दिन साथ छोड़ देगा--परन्तु दूसरा छाया की भांति जीवन पर्यन्त "वेद-सूर्य" का सखा रहेगा।

नवमी का आरम्भ होते ही कारागार की कठिन चौकसी में नवकुमार श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म हुआ। पिता वासुदेव और माता दैवकी पुत्र के चन्द्रानन को देख कर कुछ समय के लिये कारागार के दुःखों को बिलकुल ही भूल गये॥

आओ पाठक! आज हम लोग भी अपनी सदा की सहेली दुःखावली को भूल कर, साम गान और दीनों को दान करके कृष्ण जन्मोत्सव मनावें। खैर! आप को विलम्ब है तो आप किसी से सम्मति लेलें, हम भी कथा का कुछ अंश कहलेते हैं। हमारे कई पाठक जो उपन्यासों में उलझे रह कर इतिहासों की ओर कभी देखते भी नहीं, उनके, ज्ञातार्थ कहना होगा कि * आहुक नृप के देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र थे। उन

* पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ ६६ में आहुक को कंस का पिता लिखा है परन्तु यह कंस का पितामह था। प्रमाण के लिये देखिये:—

आहुकात् काश्यदुहितुर्द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः।
देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भ समावभौ॥
(लिङ्गपुराण अ० ६६ श्लो० ३८)

में से उग्रसेन आज से पांच सहस्र वर्ष पूर्व मथुरा नगरी में राज्य करता था। यह अपनी श्रेष्ठता के कारण पृथ्वी के एक बड़े भाग में प्रसिद्ध था परन्तु इस का पुत्र कंस महादुष्ट निकला। वह दुष्ट (कंस) बालक बालिकाओं को शिलाओं पर पछाड़ २ कर मार डालता था, रात्रि दिन भोग विलास में ही मग्न रहता था, तथा मदिरा पान ही उस का कर्म्म था और मदिरा ही धर्म। इसी दुराचारी ने कृष्णचन्द्र के पितामह शूरसेन जी के प्राण हरे थे, परन्तु संयोग की बात है कि शूरसेन के पुत्र बसुदेव जी के साथ इस के पितृव्य देवक की पुत्री देवकी जी का विवाह हुआ। विवाहोत्तर कंस, देवकी जी व बसुदेव जी को रथ में बिठाकर बसुदेव जी के घर पहुंचाने आया। उपर्युक्त श्लोकों व संस्कृत के अन्य ग्रन्थों में भी लिखा है कि उस समय कंस को आकाशवाणी हुई "कि देवकी का आठवां पुत्र तुझ को मारेगा"। अभिप्राय यह है कि कंस को भय हुआ कि जिस शूरसेन को मैंने विना ही कारण के मारा उस की या उस के पुत्र की सन्तति मुझ से बदला लिये विना न रहेगी। जो यदि आकाशवाणी का इस से भिन्न कुछ दूसरा प्रयोजन होता तो देवकी और उस के पुत्रों के अतिरिक्त बसुदेव जी के अन्य संबन्धियों को वह क्यों दुःख देता; अर्थात् बसुदेव जी की दूसरी स्त्री रोहिणी जी को भी नन्दराय जी के यहां जाकर छिपने की क्या आवश्यकता थी? तथा वह (कंस) नवजात बसुदेव-कन्या को भी क्यों मारता? निश्चय ही आकाशवाणी का अर्थ कंस का पूर्वोक्त हृदयाऽऽकाशस्थभाव ही था "कि मुझ शूरसेन के प्राण संहारक से शूरसेन का वंश अवश्य ही बदला लेगा"। अतः इस ने बहिन बहनोई को कारागार में डाल दिया और उन के नवजात पुत्रों को नष्ट करने लगा। श्रीकृष्ण के जन्म के पूर्व ही श्रीकृष्ण के ६ भ्राता कंसद्वारा मारे गये-और देवकी जी का सातवां गर्भ भयवशात् पतन होगया। हम पहिले कह चुके हैं कि बालकृष्ण के चन्द्रानन को देख कर कुछ समय तक उक्त दम्पति कारागार के दुःख को सर्वथा भूल गये, परन्तु झट ही कारागार और कंस की दुष्टता याद हो आई। कंसजनित उपद्रव से बचने का साधन तो इन के पास उपस्थित ही था, अर्थात् जिस समय देवकी जी और यशोमती जी (नन्दरानी) गर्भवती थीं, उस समय एक स्नानालय पर इन दोनों की भेंट हुई थी। कुशल प्रश्नानन्तर इन दोनों सहेलियों में परस्पर प्रतिज्ञा हुई "कि अपने जो कुछ सन्तति होगी, बदल लेंगी, एक-दूसरी को अपनी सन्तति देकर उस की सन्तति ले लेंगी"। यहां यह प्रश्न समुपस्थित होता है "कि क्या नन्दरानी को कंस के उपद्रव ज्ञात नहीं थे? क्या यशोदा जी नहीं जानती थीं कि जैसे सूर्य निज सन्तान का हनन करता है वैसे कंस अपनी बहिन देवकी के पुत्रों को हनन करने पर तुला हुआ है। फिर उस ने किस प्रकार निज सन्तान के प्राण संकट में पड़ें, ऐसी प्रतिज्ञा की? हम कहेंगे कि यह सब देवी यशोदा को ज्ञात था परन्तु प्रेममयी देवियों की परोपकार चेष्टा लोकोत्तरा होती है। वे समझती हैं "कि परहित ही धर्म है और परहानि ही अधर्म

है । इस के सिवाय धर्माधर्म कुछ भी नहीं है" यदि हमारे पाठक "मेवाड़ इतिहास" में दाई पन्ना का लोकपावन वृत्तान्त पढ़ें तो उन को हमारे कथन में अणुमात्र भी सन्देह न रहे । सारांश यहहै कि वसुदेव और दैवकी जी ने निश्चय करलिया कि बालक को अतिशीघ्र नन्दराय के घर पहुंचाना चाहिये । अब निश्चयानुसार कार्य्य करने में कोई बाधा थी तो वह द्वारपालों की रोक टोक, परन्तु दुष्ट कंस की दुष्टता से अप्रसन्न हुए २ द्वारपाल भी इस दम्पति के अभिष्ट में बाधक नहीं हुए । दैवकी जी को कारागार में ही छोड़कर श्री वसुदेव बालकृष्ण को आन की आन में नन्दराय जी के धाम गोकुलग्राम में पहुंचा आये और यशोदा जी की नवजात पुत्री को अपने यहां लेआये* इस समय इन को इतनी प्रसन्नता हुई कि वह वर्णन करने में नहीं आसकती । वर्षा की पिछली रात में निर्जन बन का सर्जल-देश कैसा भयङ्कर और कष्टकारक होता है, सुज्ञपाठक जानते ही हैं, परन्तु पुत्र स्नेह स्निग्ध वसुदेव हृत्कमल पर उस भयङ्करता और कष्टकारकत्व के पानी की एक बूंद भी न ठहरी । तब भी कहते खेद होता है कि यशोदा जी की बालिका कारागार में आते ही रोई और सूचना पाकर नराधम कंस इस बच्चे को पाषाण शिला पर पछाड़ने को ले गया । किसी कवि ने ठीक कहा है:—

" विनाशकाले विपरीतबुद्धिः"-पाठक! आइये ! इस कुबुद्धि कंसका अशुभदायक दर्शन त्याग कर हम लोग श्रीगोकुलग्राम को चलें । वहां नन्दभवन पर, उषाकाल से ही आनन्द कादंम्बिनी छाई हुई है । एकान्त में नन्दराय अपनी प्रिया के साथ-रेणु संयुक्त विग्रहवान्, नवीननीरदसमप्रभा वाले, अतीव सुन्दर, शरत्पार्वण चन्द्रानन, नीलेन्दीवर लोचन, कभी रोने और कभी हंसने वाले तथा वारम्बार द्वार की ओर दृष्टि डाल ने वाले " बाल कृष्ण" को मुहूर्त्त मात्र भी न देखने पाये थे कि बालकवयस्य और वृद्ध गोपिकाओं ने बालकृष्ण का पालना घेर लिया । वे गोपिकाएँ बालकृष्ण को चूम चूम प्रहर्षित हो शतशः आशिष देने लगीं तथा ग्वाल बाल का भी समाज आ पहुंचा । कोई ग्वाल कर-ताल और कोई ग्वाल स्वर ताल के साथ नृत्य करके उत्सव की शोभा बढ़ाने लगा । नाना प्रकार के वाद्यों की ध्वनि से इस उत्सव के शिशु दर्शक भी नर्त्तक हो गये । उस समय नन्दराय ने ब्राह्मणों से वेद पाठादि कराके उनको मोदक, रत्न सुवर्ण, वस्त्र और सहस्रों गायें दान में दीं और इनके सम्बन्धी ग्वाल समुदाय ने भी इस हर्ष में प्रमुदित हो दीन-पथिक और उत्सव दर्शकों के लिये दधि-दुग्ध की जलधारा सी प्रवाहित कर दी ।

श्रीकृष्ण का ज्येष्ठ भ्राता (जो श्री कृष्ण से कुछ मास बड़ा था) रोहणीनन्दन बलराम भी नन्दराय के यहां ही था । इन दोनों बाल-कुमारों ने नन्द-गृह को आनन्द विलास में अद्वितीय बना दिया ।

भाद्रपद शुक्ल ११ को श्रीकृष्ण का

नोट-वसुदेवश्च श्रीकृष्णं संस्थाप्य नन्दमन्दिरे ।
गृहीत्वा बालिकां हृष्टो जगाम निजमान्दिरम् ॥
(ब्रह्मवै० कृ० ज० ख० अ० ६)

"निष्क्रमण" संस्कार हुआ और माघ शुक्ल १४ बृहस्पतिवार को वसुदेवजी के भेजे हुए यदुवंश के आचार्य्य गर्गजीने उक्त दोनों भ्राताओं का "नामकरण" व "अन्नप्राशन" संस्कार कराया।

अब कुछ ही मास में * राम कृष्ण दोनों बैयां २ चलने लगे और गोबर माटी तथा धूलि में वस्त्र साने हुए, नन्द-भवन में एक कोने से दूसरे कोने तक जाने लगे। पुनः कुछ समय में गोवत्स की पुच्छ पकड़ कर उनके पीछे २ खिंचे फिरना ही इनका कार्य हुआ।

एक समय कई वृद्ध गोप उपनन्दादिकों ने निश्चय किया कि "दुष्ट कंस के उपद्रव से बचने के लिये गोकुल परित्याग करके वृन्दावन नाम वन में बसें। क्योंकि वहां पर्वत, तृण और लतादिक ये सभी अच्छे हैं, इस वास्ते वह वन गायों को भी बहुत शुभदायक होगा"। अतः नन्द उपनन्दादिक के साथ सकल गोकुलस्थों ने वृन्दावन को सुशोभित किया।

तदनन्तर बड़े होने पर राम कृष्ण की गो-वत्स के चराने की अभिरुचि हुई। ये दोनों इस कार्य्य के वास्ते वन में जाकर मयूरपक्ष के मुकुट और नाना भांति के पुष्पाभूषण बनाते और अपने गौर तथा श्याम तनु पर उनको धारण करते। देखिये पाठक! उस बाल कृष्ण के नवनीरद सम मनोहर दृश्य का कविवर विहारीलाल ने क्या ही उत्तम चित्र खींचा है:—

दोहा—

सोहत ओढ़े पीत पट, श्याम सलोने गात।
मनो नीलमणि शैलपर, आतप परयो प्रभात॥
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठि पट जोति।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्र धनुष रंग होति॥

तथा बाल कृष्ण का स्वरूप वर्णन करने में श्री दीनदयालगिरि जी ने भी कमाल किया है:—

मालिनी छन्द—

चरन कमल राजैं। मंजु मंजीर बाजैं॥
गमन लखि लजावैं। हंसऊ ना हिं पावैं॥
कनक बरन काछे। काछिनी धेनु पाछे॥
विहरत बनवारी। गोप के वेष धारी॥
ललित लकुट हाथे। मोर के पुच्छ माथे॥
विहरत जमुना के। तीर में कृष्ण राजैं॥
अधर मधुर बंसी। बाजती चित्त हारी॥
सुनत धुनि न मोहैं। कौन हैं कर्णधारी॥
कुटिल अलक सोहै। सीस चीरा लसो है॥
चलत गति रसाला। मोहते नन्द-लाला॥

पहिले हमको बाल कृष्ण की बंसी के ऐसे मधुर होने में सन्देह था, परन्तु जब हमने पं० विष्णुदिगम्बर जी अध्यक्ष गान्धर्व महाविद्यालय के पञ्चवर्षीय बालक को ताल देकर "ध्रुवपद" गाते सुना तो हमारा सन्देह जाता रहा। वृन्दावन में जाकर कृष्ण ने कंस के पक्षीय नरव्याघ्र बकासुर, अघासुर और धेनुकासुर आदि को हनन करने के सिवाय नागवंशीय कालियनामक * महाबली का पराजय किया।

* बलदेवजी का संक्षिप्त नाम। २

* पूर्व काल में नाग नामक एक प्रसिद्ध वंश था। इस वंश के साथ उस काल के उच्च वंशीय भी बेटी व्यवहार करते थे। तदनुसार इन्द्र के सारथी मातलि ने सुमुख नामक नाग वंशोत्पन्न मनुष्य को कन्यादान के लिये चुना था। देखो—

ततो ऽब्रवीत् प्रीतिमनाः मातलिर्नारदं वचः।
एष मे रुचिस्तात जामाता भुजगोत्तमः॥

(महाभा० उद्योग पर्व अ० १०३ श्लोक २५)

एक दिवस श्रीकृष्ण ने देखा कि सब ग्वाल इन्द्रपूजा की तैयारी कर रहे हैं। अतः आप ने नम्र हो पिता से पूछा कि "इस से क्या फल मिलता है और किस के उद्देश से यह सब किया जाता है ?" आप ने यह भी कहा कि "मनुष्य जो काम करता है, वह जानकर करता है और विना जाने भी करता है, वहां जैसी सिद्धि जाननेवाले की होती है, वैसी अनजान की नहीं होती।* आप ने यह अनुष्ठान करना विचारा है सो कृपया बतलाइये कि यह वैदिक है अथवा लौकिक। उत्तर में नन्दराय जी ने कहा कि भगवान् इन्द्र मेघ रूप हैं, मेघ उन की प्रिय मूर्तियां हैं, वे जीवों के जिलाने और तृप्ति देनेवाला जल बरसाते हैं। इसलिये हम लोग आज इन्द्रपूजा की तैयारी कर रहे हैं"। श्रीकृष्ण ने कहा कि पिता! जैसे कुलटा स्त्री जार पुरुष की सेवा से कल्याण को प्राप्त नहीं होती है, वैसे ही एक (ईश्वर) की दी हुई आजीविका खाकर, दूसरे का सेवन करनेवाला मनुष्य सुखी नहीं होता है। ब्राह्मण को वेदाध्ययन से, क्षत्रिय को पृथिवी की रक्षा से, वैश्य को वार्ता से और शूद्र को सेवा से जीविका करनी चाहिये। वार्ता ४ प्रकार की है—खेती, गोरक्षा, व्यापार और ब्याज लेना। इन में से हमारी गोरक्षा ही जीविका है। अपनी जीविका गायों के आधीन है, परन्तु गायों की जीविका इन्द्राधीन नहीं। ८ मास सूर्य्य जल ग्रहण करता है, सोही वह ४ मास त्याग करता है। इसलिये जो सामग्री इन्द्रपूजा के लिये तैयार की है, उसी से गौ, ब्राह्मण और पर्वत का यज्ञ *कीजिये। हलुआ, लप्सी, मालपूआ, पूरी, कचौरी और दूध, दही जो (इन्द्रपूजार्थ एकत्र किया है) सब लेलीजिये। वेदवेत्ता ब्राह्मणों के हाथ से अग्नियों में होम कराइये, उन को अन्नदान गोदानादिक दीजिये; जो दीन, कुत्ते, चाण्डाल तथा पतितादि हैं उन का भी यथायोग्य सत्कार कीजिये, गायों को तृण डलवाइये, ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा कीजिये। हे पिता! मेरा तो ऐसा मत है। गौ, ब्राह्मण तथा पर्वतों का यज्ञ मुझ को अति प्रिय है।

ऐसा उक्तियुक्त पूर्ण श्रीकृष्ण का कथन सत्यग्राहक श्री नन्दादिक ने सहर्ष स्वीकार किया। पूर्वोक्त इन्द्रपूजा विषयक वृत्तान्त को पाठक महाशय विशेष ध्यान से पढ़ें और सोचें कि उन के पुरुषा क्या थे और वे क्या होगये हैं? शोक कि पुरुषा तो एक ईश्वर के उपासक थे और वे अनेकेश्वर तथा भूतप्रेत के उपासक बने हुए हैं!

कंस का दरबार।

जब श्रीकृष्ण ने कंस के पक्षपाती "अरिष्टासुर" को भी यमालय पहुंचा दिया तब कंस के एक गुप्तचर ने उस के पास आकर कहा कि "कन्या तो नन्दराय की पुत्री थी, कृष्ण वसुदेव जी का पुत्र है। वसुदेव जी ने आप के भय से निज मित्र नन्दराय के यहां उस (आप के योद्धाओं के घातक) को रखदिया है"। कंस यह बात सुनते ही महाक्रोधयुक्त हुआ और तेज तलवार उठाकर श्रीदेवकी तथा वसुदेव को मारने के लिये चला। यह देखकर गुप्तचर विनय

* श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध अ० २५ श्लो० ६

+ पर्वतयज्ञ का प्रयोजन पर्वतस्थ प्राणियों की सेवा करना है।

सहित बोला कि " राजन् ! आप इन को न मारें, इन के मारे जाने से सकल बुराई की जड़ इन का पुत्र कहां को भाग जायगा।" यह सम्मति कंस के हृदय में बैठ गई और वह अब केवल राम कृष्ण के मारने के लिये बीसों प्रकार के जोड़ तोड़ लगाने लगा। उस ने केशी नामक दैत्य को बुलाया और उस से कहा कि "तुम शीघ्र जाकर राम कृष्ण को मारो।" फिर मुष्टिक, चाणूर, शल तोशलक आदिक मल्ल, मन्त्री और महावतों को भी बुलाया और कहा कि " हे वीर चाणूर और मुष्टिक ! नन्दराय जी के यहां वसुदेव जी के पुत्र राम कृष्ण हैं, उन को मैं बुलाऊंगा। तुम मल्लभूमि के चारों ओर अनेक भांति के मञ्च तैयार कर रक्खो, पुर व देश के लोगों को भी दंगल की सूचना करदो और जिस समय राम कृष्ण आवें तो उन को सावधानी के साथ मल्लयुद्ध की रीति से लड़कर मार डालो। हे महावत ! हे श्रेष्ठतर ! तू "कुवलयपीड" हाथी से मेरे उन शत्रुओं को मरवा डालना। हे सभासदो! तुम लोग विधिपूर्वक आगामी चतुर्दशी को धनुर्याग का प्रारम्भ करो और झट ही मनोरथ पूर्णकर्ता महादेव जी के निमित्त पवित्र पशु भेंट करो।" तदनन्तर वह (कंस) अक्रूर यदुवंशी को बुलाकर और बड़ा ही स्नेह जतला कर बोला कि " मित्र ! मेरे लिये आप मित्रोचित कार्य्य करें:—

धीरज धर्म मित्र और नारी।
आपद् काल परखिये चारी॥

भावार्थ यह कि आप नन्दराय के व्रज में पधारें, वहां वसुदेव जी के पुत्र राम कृष्ण रहते हैं उन को रथ में बैठाकर शीघ्र ही ले आवें। मित्र ! मैंने आप का आश्रय लिया है और बारम्बार निवेदन करता हूं कि आप उन्हें धनुर्याग का नाम लेकर, भेंट सहित, नन्दादिक गोपों के साथ अवश्य ही ले आवें। यहां उन के आने पर मैं उन्हें कालरूप हाथी से मरवा डालूंगा यदि वे उस से बच निकले तो मल्लों के हाथों से तो अवश्य ही नहीं बचेंगे। उन के मारे जाने पर मैं दुखी वसुदेव आदि उन के सब बान्धवों को मारूंगा। राज के लोभी बूढ़े उग्रसेन उस के भाई देवक और दूसरे भी जो मेरे बैरी हैं उन को नहीं छोड़ूंगा। हे मित्रवर! फिर यह पृथिवी निष्कण्टक होजायगी। क्योंकि शंबर, नरक और बाणासुर ये सब हमारे ही हैं तथा जरासन्ध तो मेरा ससुरा ही है। मैं आप को कहता हूं कि राम कृष्ण हैं तो बालक ही, जरा मथुरा की सैर का बहाना कर देना, बस दौड़ते हुए आजायंगे। अब देर न कीजिये शीघ्र जाकर राम कृष्ण को ले आइये। मैं अवश्य ही आप का जन्म भर उपकार मानूंगा।

श्रीकृष्ण का मथुरागमन।

कंस के भेजे सुफलक-पुत्र अक्रूर के साथ, गोपजन और नन्दराय जी के सहित, श्रीरामकृष्ण मथुरा को विदा हुए। इस कारण देवी यशोदा बावली सी होकर द्वार २ घूमने लगी और वह प्रत्येक वृन्दावनवासी से कहने लगी, " इस व्रज में हमारा कोई ऐसा भी हितैषी है जो हमारे लाल को मथुरा जाने से रोक ले। हमारे बाल कृष्ण और बलराम

विना, राजा कंस का कौन काम रुका हुआ है, जो इनको बुलाया है। यह सुफलकसुत अक्रूर बड़ा ही क्रूर है, जो हमारे लिये काल-स्वरूप बन कर आया है। हमारा सब गोधन कंस ले ले और मुझ को बन्दीगृह में डाल दे; परन्तु मैं इतना चाहती हूं कि मेरा कमलनयन मेरी आंखों के आगे ही रहे। मैं रामकृष्ण को ही देख कर जीवन धारण करती हूं, यदि गोपाल के बिछुड़ने पर भी मेरे कर्मवश प्राण रहेंगे तो मैं किस को कण्ठ लगाऊंगी। *

कहा धनुष यह देखि हैं, बालक अति अज्ञान।
कियो कंस कछु कपट यह, परत मोहि यों जानि†"

सारांश यह है कि देवी यशोदा ने बहुत ही विलापालाप किया। श्रीराम कृष्ण के वियोग से जो उसे हृदय-वेदना हुई, सो सूर जैसे कविराज से भी पूर्णतया प्रकट नहीं हो सकी; फिर हम जैसों की तो क्या कथा है?

टेर टेर धर परत यशोदा,
अधर बदन बिलखानी।
"सूर" सो दशा कहां लग बरणों,
दुखित नन्द की रानी॥

अतएव इस विषय को यहां ही छोड़ कर हम मथुरा सम्बन्धिनी वार्ता लिखते हैं। सायङ्काल श्रीराम-कृष्ण की मण्डली मथुरा पहुंची। अक्रूर ने इनसे कहा कि "आप अपने मित्रवर्ग सहित हमारे घर चलिये, इनको कृतार्थ कीजिये"। ये बोले कि "हम यदुकुल के बैरी कंस को मार कर आपके घर आवेंगे"। तब अक्रूर उदास होकर अकेले ही कंस के भवन को गये और उसको इनके आगमन की सूचना देकर निज घर को पधारे। रात्रि भर तो श्रीराम-कृष्ण के समाज ने एक उपवन में ही निवास किया और दूसरे दिवस दुपहर के समय यह समाज नगर में प्रविष्ट हुआ।

आज मथुरा ठीक वैसी ही सुधारी, शृङ्गारी गई कि जैसी पति के पधारने के आनन्द समाचार को सुन कर पतिप्राणा वधू वस्त्राभूषण से सज्जित होती है।

चौपाई—

कसी कोट कटि किंकिणी ऐसी।
पति आगम तिय सोहति जैसी॥
मन्दिर चित्र विचित्र सुहाये।
जनु भूषण रचि रङ्ग बनाये॥
जहं तहं विविध बाजने बाजैं।
मनहु चरणनूपुर ध्वनि गाजैं॥
(ब्र० वा०)

फिर यह समाज पुरवासियों से धनुषयज्ञ का स्थान पूंछता २ वहां गया और इसने वहां पहुंच कर साश्चर्य्य इन्द्रधनुष के सदृश एक ऐसा धनुष देखा कि जिसकी बहुत से रक्षक लोग रक्षा करते थे, जिसकी पूजा होती थी और जिसके चारों ओर बहुमूल्य पदार्थ रक्खे हुए थे। रक्षकों की रोक टोक को न मानता हुआ समाजमुख्य श्रीकृष्ण उक्त धनुष के समीप गया और इसने, उसको उठा कर, उसको बीच में से तोड़ डाला।

छन्द—

उठे तब करि क्रोध योधा,
मार मार पुकार हीं।
नन्द-सुत रण-वीर हो,
धर धीर असुर संहारहीं॥
एक झटकत एक पटकट,
ते न मटकत फिर तहीं।
एक सटकत एक लटकत,

* सूरदास जी के पद की छाया से।
† ब्रजवासीदास।

एक सटकत जहिं तहीं ॥
ताल चटकत चमकि झटकत,
देखि भटकत नर भले।
एक पकरि फिराय पटकत,
जात ते नृप पहं चले ॥

दोहा—

ख्याल हि मारे असुर सब,
तोरि धनुष नन्दलाल।
चले सामुहें पवरि तकि,
जहां कुवलिया व्याल ॥

श्रीकृष्ण रंगभूमि के द्वार पर आकर क्या देखते हैं कि कुवलियापीड नामक गजराज खड़ा है। महावत उसे प्रेर रहा है। अतः झट ही श्रीकृष्ण ने कमर कसकर मेघनादसम गम्भीर शब्दों के साथ महावत से कहा कि "अरे महावत! शीघ्र ही हमें मार्ग दे, नहीं तो हम तुझे हाथी के सहित यमालय में पहुंचा देंगे।" इस भांति धमकाते ही महावत ने हाथी को कुपित किया और श्रीकृष्ण की ओर उसे चलाया। हाथी ने भी शीघ्रता से दौड़ कर श्रीकृष्ण को सूंड से पकड़ लिया। श्रीकृष्ण अवसर पाकर सूंड से निकल गये। तदनन्तर हाथी श्रीकृष्ण को न देखकर बड़ा भारी कोपयुक्त हुआ और सूंड से सूंघ २ कर फिर श्रीकृष्ण को पकड़ लिया। फिर भी वे बल पूर्वक सूंड से पृथक् हो गये और वे सब महाबली हाथी की पूंछ पकड़ कर कोई २५ धनुष के अनुमान उसे पीछे पावों खींच कर ले गये।

छन्द-

जनु मदन नृत्यत साजि गति,
इमि श्याम अरु गज खेलहीं।
पूंछ कर गहि कबहुं आगे,
कबहुं पाछे पेलहीं ॥
गजहि लखि पुर नारि नर सब,
बिकल विधि ही मनावहीं।
बेगि मारें श्याम गज को,
हम निरखि सुख पावहीं ॥
दीन्हो महावत बहुरि अंकुश,
क्रोध करि हाथी चल्यो।
जबहिं हरि गहि पूंछ पटक्यो,
नेक नहीं भूपर हल्यो ॥
लये खैंच मृणाल ज्यों रद,
सुमन झर देवन करी।
"दास ब्रजवासी" हरषि सब,
असुर की सेना डरी ॥

उपरोक्त वार्ता को पढ़कर कुछ पाठकों को बड़ा आश्चर्य होगा, परन्तु वे भोजनीय पदार्थ दुग्ध घृतादि के गुण और ब्रह्मचर्य के प्रताप से परिचित हों तो किसी प्रकार आश्चर्य्य-सागर में न डूबें। तथा धर्म्म-बलधारी ब्रह्मचारी लोग क्या नहीं कर सकते?

छन्द—

पटक्यो चरण गहि फेरि महि,
चाणूर अति-बल सांवरे।
धंसि गयो धरणी मसकि अंग,
सब विकट भूल्यो दांवरे ॥
भयो शब्दाघात सुनि नृप,
कंस उर धसको परयो।
निरखि पुरजन नारि नर सब,
हर्षि हिय आनंद भरयो ॥
पकरि ऐसिये भांति तब,
बलराम "मुष्टिक" मारियो।
कहैं धनि धनि लोग सब,

जय जयंति सुरन उचारियो ॥
शल्ल अरु अति शल्ल आदिक,
मल्ल तहं जितने हते ।
लपटि झपटि पछारि कै,
पुनि नन्द-सुत मारे तिते ॥

दोहा—

जब मारे हरि मल्ल सब,
परयो कटक में शोर ।
जिमि तारागण रवि उदय,
छिपे असुर चहुं ओर ॥ (वृ० वा०)
रामकृष्ण का चरित लखि,
एक कंस को त्याग ।
सभी लोग हर्षित हुए,
ब्राह्मण सह अनुराग ॥

सोरठा—

ब्राह्मण सह अनुराग,
साधु साधु कहैं मोद से ।
हरि कर कंस कु-भाग,
बुरे वचन कहने लगो ॥

दोहा—

"दुराचार मय राम सह,
कृष्ण करो तुम दूर ।
गोपों का धन लट लो,
वसुदेवादिक चूर ॥
दुर्मति-रत नन्दराय को,
बंदीगृह दो डार ।
उग्रसेन भी मिलि रहो,
दीजे वाको मार ॥"
पाप किये यदि लाभ हो,
धर्म किये से हान ।
"किंकर" तब भी राखिये,
धर्म कृपा की बान ॥

कंस नृपति ने पाप घट,
कियो हर्ष से पूर ।
पर वा को घट पाप ने,
सब विधि दीन्हो चूर ॥
"वृद्धि न ह्वै है पाप तें,
वृद्धि धर्म तैं धार ।
सुन्यो न देख्यो सिंह के,
मृग को सो परिवार ॥

चौपाई—

अति बलवन्त नन्द के बारे ।
तब सकोप नृप ओर निहारे ॥
गये सचान सचकि चढ़ि दोऊ ।
बाज झपट देखत सब कोऊ ॥
ह्वै गयो चकित नृपति भय मान्यो
आयो काल निकट यह जान्यो ॥
रहि गयो लिये शस्त्र कर माहिं ।
हरि को मारि सक्यो सो नाहिं ॥
तब ही कृष्ण लात इक मारी ।
गिरि गयो मुकुट शीश तें भारी ॥
दीन ढकेल मंच तें भूपर ।
कूद परे हरि ताके ऊपर ॥

(ब्र० वा० दा०)

तोटक छन्द—

जयदेव बखानत नीक करी ।
हरि ने वसुधा सब रत्नमयी ॥
हरि, कंस हनो यह बात भली ।
बिजुरी सम दौड़ गई जगती ॥
नर, देव किया उपकार भला ।
धनि नन्दलला, वसुदेव लला ॥
"कवि किंकर" वैदिक नीमचका ।
सुख मूल भनी हरि राम कथा ॥

तदनन्तर श्रीरामकृष्ण सब से पहिले

श्रीवसुदेव और देवकीजी से मिले और विनय पूर्वक इन के प्रति बोले कि "हे जननी! हे तात! आप हम दोनों पुत्रों के लिये बड़ा स्नेह रखते थे, परन्तु हम मन्दभागियों को अपनी बाल्य और किशोरावस्था में आप के निकट निवास न मिलने से "मा बाप के समीप रहने से जो बालकों को आनन्द मिलता है" सो नहीं मिला। धर्म्म के जानने वालों ने ठीक कहा है कि "जिन ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों ही का देने वाला शरीर उत्पन्न किया, तथा पालन पोषण कर के बड़ा किया उन माता पिता के ऋण से मनुष्य, उन की १०० वर्ष तक भी सेवा करके, उऋण नहीं हो सकता। जो मनुष्य-पुत्र, शरीर और धन से समर्थ होकर उन को जीविका नहीं देता, उस का निश्चय ही परलोक बिगड़ जाता है। वृद्ध माता, पिता, पतिव्रता स्त्री, बालक, पुत्र, गुरु, ब्राह्मण और शरणागत का जो (शक्ति रखते हुए) पालन नहीं करता, सो जीता ही मुर्दा नहीं तो क्या है?। अतएव हमारा इतना काल आप की सेवा किये बिना व्यर्थ गया, इस का हमको अत्यन्त खेद है। हे माता! हे पिता! हम पराधीनों से जो आप की सेवा नहीं बनी सो क्षमा कीजिये!"

ऐसा सुयोग प्राप्त कर देवकी और वसुदेव जी बहुत ही प्रसन्न हुए तथा राम-कृष्ण के मस्तक सूंघ उन्हें निज गोदी में बिठा उन पर आनन्द के आंसू बहाने लगे। फिर श्रीकृष्ण ने मातामह उग्रसेन (कंस के पिता) को राज-गद्दी पर बिठाया और उन निज सम्बन्धी जन को जो कंस के भय से व्याकुल हो कर भाग गये थे आदरपूर्वक बुलाकर राजधानी मथुरा में बसाये।

धन्य श्रीकृष्ण आप के उदार-चरित देख कर किसी कवि का यह दोहा स्मरण हो आता है:—

बिपति परे हू देइबो—सतपुरुषन को काम।
राज बिभीषन को दियो, वैसी विरियां राम॥

पाठक! ऐसे विशाल राज्य को प्राप्त कर के तृणवत् उसे दूसरे को प्रदान कर देना साधारण कार्य नहीं है। ज़रा तोलिये श्री कृष्ण के व्यवहार को उन यवन बादशाहों के व्यवहार के साथ जिन्हों ने केवल राज्य लोभ से सहोदर भाई और सगे बाप को मार डाला। प्यारे शिक्षाधारी पाठकों से सविनय आवेदन है कि वे इस लेख को उपन्यास अथवा मनोरञ्जन का द्वार न समझें, परन्तु इस से माता पिता की सेवा और अधिकारियों के अधिकार पर दृष्टि डालना सीख कर श्रीकृष्ण के सच्चे अनुयायी बनें।

पश्चात् श्रीरामकृष्ण नन्दरायजी के पास गये और हाथ जोड़ कर बोले कि "हे पिता! आपने परम स्नेह पूर्वक चिरकाल तक हमारा पालन किया और ठीक निज पुत्रों के समान हम पर प्रीति रक्खी। वास्तव में माता पिता वे ही हैं जो निज-बान्धव-वियोगी अनाथ बालकों का अपने औरस पुत्र के समान पालन करें*। हे तात! आप व्रज को पधारें, हम भी स्नेह से दुःखी बन्धुओं को सुखी करके फिर आप के दर्शनों को आवेंगे।" अतः नन्दराय जी अत्यन्त दुःखी हो आंसुओं से नयन धोते हुए कई गोपों के साथ व्रज

* श्रीमद्भागवत पू० अ० ४५ श्लोक २६।

को गये। श्रीदेवकी-वसुदेव जी ने अपना पहिला कर्तव्य राम-कृष्ण का उपनयन संस्कार करादेना विचारा तथा वैदिक ग्रन्थानुसार परमोत्साह सहित यह कार्य्य सम्पूर्ण कराया गया। अर्थात् श्रीराम-कृष्ण ने उपनयन संस्कार से द्विजत्व प्राप्त किया *। तदनन्तर इन दोनों भाइयों ने श्रीगर्ग यदुकुलाचार्य्य से ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण करके उज्जैन निवासी "सांदीपनि" उपनाम "काश्य" के "गुरु-कुल" में निवास किया। होने वाली सन्तति को परमोपकारक गुरुकुलवास की आचरण द्वारा शिक्षा देते हुए, जितेन्द्रिय रहते हुए, ये दोनों भ्राता समुचित रीति के साथ गुरु काश्य से वेद-वेदाङ्ग पढ़ने लगे और स्वल्प काल ही में ये अङ्ग और उपनिषदों सहित वेद धनुर्वेद, धर्मशास्त्र, मीमांसा, तर्क विद्या, सन्धि, आदि राजनीति और गीत- वाद्यादि ६४ ही कला सीख गये। किसी ने ठीक कहा है कि पूर्व जन्म की नेक कमाई किये हुए पूजनीय योगी विद्या प्राप्त्यर्थ केवल संकेत मात्र की आवश्यकता रखते हैं। पश्चात् गुरु से निम्नोक्त आशीर्वाद लेकर और पवन समवेग वाले रथ में बैठ कर श्रीराम-कृष्ण मथुरा में पीछे पधारे।

दोहा—

यश पुनीत इस लोक में, हो तुमरो हे वीर।
वेद सकल परलोक में, हो तुमरे हे धीर॥

द्वारिका।

श्रीमद्भागवतकार लिखता है कि कंस के मरने पर उस की अस्ति और प्राप्ति नाम की दो राणियां अति दुःखी हो, निज पिता जरासन्ध (मगध देशाधिपति) के यहां चली गई और दोनों ही ने टीका—टिप्पणी के साथ पिता को अपने विधवा होने का कारण सुनाया। अतः जरासन्ध बहुत क्रोधित हुआ और सेना लेकर १७ वार श्रीकृष्ण से लड़ने को आया। खूब ही वीररूपी मेघ गरजे, शस्त्रों की ज्वालारूप बिजुली चमकी और रुधिररूपी जल बरसा। परन्तु नीति-निपुण श्रीकृष्ण ने उस की सेना को हराकर भी उस को भागने के अवसर दिये। एक वार वीर जरासन्ध के निजसेनावियोगी और रथ विहीन होने पर श्रीबलराम ने उस को पकड़ लिया था और बलरामजी उस को पाशों से बांधना चाहते थे, परन्तु श्रीकृष्ण ने उस वीर-पुरुषों के माननीय जरासन्ध को छुड़वा दिया। फिर भी जरासन्ध चढ़ाई करने को था और "कालयवन" असंख्य म्लेच्छों को लेकर चढ़ ही आया। श्रीराम कृष्ण ने दुर्गम दुर्ग की परमावश्यकता जान कर समुद्र के बीच "द्वारिका" की रचना कराई। और सब बन्धुओं को वहां पहुंचा कर ये युद्ध के लिये तैयार हुए। पश्चात् श्रीकृष्ण ने "काल-यवन" को मुक्ति पूर्वक मार कर तत्काल जरासन्ध की बड़ी भारी चढ़ाई से अपने को बचाया और भीष्मक राजा की कन्या रुक्मिणी का पत्र पाकर उस से स्वयंवर विवाह किया।

सुधर्मा-सभा।

में उत्तमासन पर यदूत्तम श्रीकृष्णचन्द्र विराज रहे हैं। इन के आस पास यदुवंशीय लोग चन्द्र की चारों और तारागण के सदृश सुशोभित हो रहे हैं और गान वाद्य नृत्य

* श्री मद्भागवत दश० अ० ४५ श्लोक २६।

से यह सभा अद्वितीय हो रही है। ऐसे समय में द्वारपाल द्वारा आज्ञा प्राप्त करके एक अनजान मनुष्य उपस्थित हुआ और श्रीकृष्ण जी के सन्मुख हाथ जोड़ कर के बोला कि "जो सहस्रों राजा जरासन्ध के शरणागत नहीं हुए उन को जरासन्ध ने गिरि-व्रज नामक दुर्ग में क़ैद कर रक्खा है, उन्हें आप ही छुड़ा सकते हैं। क्योंकि आप का सारा पुरुषार्थ साधुओं की रक्षा और दुष्टों के विनाश करने के लिये ही है।" इतने में नारद जी आ पहुंचे। श्रीकृष्णजी ने समस्त सभासदों के सहित नारद जी को आदर देकर उन से पूछा कि "भगवन्! पाण्डवों का अब क्या करने का विचार है?" नारद जी ने उत्तर दिया कि "आप की फूफी का पुत्र राजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहता है। सो यज्ञ में सम्मति लेने को और यज्ञस्थल की शोभा असीम होने के प्रयोजन से उसने आप को बुलाया है।" सुधर्मा के सभासद् श्री उद्धव ने कहा कि "नारदजी बहुत सुन्दर संदेशा लाये हैं, राजसूययज्ञ में दिग्विजय आवश्यक है, इसलिये वहां जाने से एक पन्थ दो काज-की कहावत पूरी हो सकती है। अर्थात् शरणागतों की रक्षा और राजा युधिष्ठिर का मान्य भी होजायगा। अतएव मेरी अनुमति है कि आप वहां अवश्य पधारें।" तदनन्तर सहदेव (युधिष्ठिर राजा का लघुभ्राता) आया और श्रीकृष्ण को राजसूय यज्ञ.र्थ हस्तिनापुर लेगया।

राजसूययज्ञ।

श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में पधार कर राजा युधिष्ठिर से बोले कि "राजन्! प्रथम तो सब राजाओं को जीतकर पृथिवी को वश में कीजिये और फिर सकल यज्ञोचित सामग्री एकत्र कर के इस महायज्ञ का प्रारम्भ कीजिये।" अतः राजा युधिष्ठिर ने दिग्विजयाभिलाष से निज भ्राता सहदेव को दक्षिण, नकुल को पश्चिम, अर्जुन को उत्तर और भीमसेन को पूर्व में भेजा। इन्होंने ४ ही दिशा के अनेक राजाओं को जीतकर बहुतसा धन और सेना राजा युधिष्ठिर की भेट कीं, परन्तु यह भी निवेदन किया कि "राजेन्द्र! एक जरासन्ध का पराजय नहीं हुआ है, उसका जीतना असम्भव सा है।" यह सुनकर राजा युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई। परन्तु परदुःख संहारी श्रीकृष्ण के उत्साहमय वचनों को सुनकर वह चिन्ता शीघ्र ही प्रशान्त होगई। फिर श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन जरासन्ध के "गिरिव्रज" नामक नगर में गये और वहां जड़पूजा के साधन "चैत्य" (चौंतरा) को तोड़कर के जरासन्ध से युद्ध के याचक बने। कुछ वादानुवाद के पश्चात् महावीर भीमसेन और जरासन्ध का युद्ध प्रारम्भ हुआ। २७ दिवस तक यह युद्ध होता रहा, परन्तु न कोई हारा और न कोई जीता। २८ वें दिन श्रीकृष्ण ने भीमसेन को दिखाकर एक वृक्ष की शाखा को चीर दिया। इस संकेत को भीमसेन भली भांति समझगया और तत्काल ही उस ने जरासन्ध को पटक कर उस के एक पांव को अपने दोनों पावों से दबा लिया और उस का दूसरा पांव अपने हाथों से पकड़कर बलपूर्वक खींचा और उस के शरीर के दो भाग कर फेंके। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण

ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव को ही जरासन्ध का राजसिंहासन देकर, सब क़ैदी राजाओं को बन्धन से मुक्त किया और सहदेव के सहित इन सब को साथ लेकर ये हस्तिनापुर पधारे। वहां विधिपूर्वक राजसूययज्ञ की सम्पूर्णता हुई। यज्ञान्त में पूजा का विषय चला। राजा युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि प्रथम किस की पूजा होनी चाहिए। आजन्म ब्रह्मचारी भीष्मपितामह ने उत्तर दिया कि "प्रथम पूजा के श्रीकृष्ण अधिकारी हैं। इन जैसा परोपकारी और सद्गुणी, आज दूसरा नहीं है।" सहदेवादिक ने भी इस का अनुमोदन किया और बहु सम्मति से प्रथम सत्कार श्रीकृष्ण का ही हुआ—

"पूजनीय गुण ते पुरुष वयस न पूजित होय।
यज्ञतिलक किये कृष्ण को छांड़ि बड़े सबकोय"

कुछ कालानन्तर श्रीकृष्ण जी द्वारिका को पीछे पधार गये।

दीनबन्धुत्व।

श्रीकृष्ण का एक ब्राह्मण मित्र था। वह उत्तम वेदवेत्ता, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, देवेच्छा से प्राप्त पदार्थों से निर्वाह करनेवाला और जीर्णवस्त्र धारण करनेवाला था। इस ब्राह्मण की स्त्री भी इसी के समान जीर्णवस्त्र धारण करती थी और भूख से बहुत दुर्बल होगई थी। एक दिवस पतिव्रता दरिद्रा वा यों कहो कि दया की पात्री उक्त स्त्री कांपती हुई, पति के पास आकर, कुम्हलाते मुख से बोली कि "हे द्विज राज! ब्राह्मणों के भक्त, शरणागतवत्सल, यदूत्तम परम ऐश्वर्य्यशाली श्रीकृष्ण आप के सखा हैं, सो हे महाभाग! सत्पुरुषों के शरण उस श्रीकृष्ण के पास आप क्यों नहीं जाते? मैं निश्चय पूर्वक जानती हूं कि आप को दया के पात्र और मित्र जानकर वह प्रभु बहुत धन देवेंगे। श्रीकृष्ण धन देंगे अथवा नहीं देंगे, ऐसा संशय मत कीजिये। वह दीनबन्धु हैं, मांगनेवाले के चित्त को जो पीड़ा होती है उसे वह विद्वान् होने से भली भांति जानते हैं वे अवश्यमेव आप का मनोरथ सफल करेंगे।" निज स्त्री की ऐसी प्रार्थना सुनकर ब्राह्मण ने अपने मन में कहा कि "धन मिलो, अथवा मत मिलो, मित्र-मिलाप तो होगा।" और ब्राह्मणी से बोला कि "हे कल्याणि! घर में कुछ भी भेंटयोग्य पदार्थ हो तो दे, मैं श्रीकृष्ण के दर्शन करूंगा"। तब उस ब्राह्मणी ने आस पास के घरों से ४ मुट्ठी चावल मांगकर उसे भेंट करने को दिये।

यह ब्राह्मण द्वारिका में पहुंच कर और अनेक चौकी उल्लंघन करके श्रीकृष्ण के प्रासाद में पहुंचा। अर्द्धोङ्गिनी के पलंग पर विराजमान श्रीकृष्ण इसको दूर से देखते ही पलंग से उठे और त्वरित इस के सम्मुख आये और प्रेम सहित बांह पसार कर इससे मिले। अपने प्रियमित्र इस ब्राह्मण के अङ्ग-स्पर्शी श्रीकृष्ण के नेत्रों में से अश्रुबिन्दु गिरने लगे। फिर इस प्रिय मित्र को चौकी पर बिठाकर, इस की पूजार्थ सब सामग्री श्रीकृष्ण निज हाथों ही लाये। सहस्रों सेवक रहते हुए भी उन्हों ने इस दीन मित्र के चरण अपने हाथों ही धोये और इस के चन्दनादि स्वयं आपने ही लगाया। दीनबन्धु श्रीकृष्ण ने इस जीर्ण वस्त्र धारण करने वाले, केवल नसावली से व्याप्त ब्राह्मण के लिये पंखा चलाने को अपनी राणी से कहा।

फिर आप इस को एकान्त में लेजाकर इस से वार्तालाप करने लगे कि "हे, धर्मज्ञ! आपने गुरु को दक्षिणा दे, गुरु के घर से आकर, निज योग्य स्त्री से विवाह किया कि नहीं? हे विद्वन्! मैं अनुमान से जानता हूं कि घर में भी आप का चित्त विषयों में लम्पट नहीं होता होगा और वस्त्रादिक भोग्य वस्तुओं पर भी आपकी अधिक रुचि नहीं रहती होगी। विद्वानों को ऐसा ही रहना चाहिये। हे मित्र! हम लोग गुरुकुल में शामिल रहे सो काल आप को स्मरण है अथवा नहीं? हे सखा! मुझ से जो आप ने वेद पढ़े हैं वे "यातयाम" अर्थात् सार रहित न हों, यही मेरी मुख्य कामना है। फिर हंस-मुख श्रीकृष्ण असीम प्रेममयी दृष्टि से निहारते हुए ब्राह्मण को बोले कि "आप घर से जो उपहार लाए हैं, वह मुझे क्यों नहीं देते?" ब्राह्मण ने लज्जा के मारे चावलों की पोटली छिपाई, परन्तु आप दीन-बन्धु ने इस से वह छीन कर, कच्चे ही चावल अरोधने शुरू किये। सारांश यह कि श्रीकृष्ण ने ज्येष्ठ बन्धु के समान ही इस ब्राह्मण का आदर सत्कार किया और दूसरे दिवस उसको विदा करती वार भी बहुत दूर तक आप उसे पहुंचाने गये तथा अति विनययुक्त वचनों से उसे प्रसन्न करके फिर अपने प्रासाद को पधारे। इस ब्राह्मण (श्री सुदामा) ने मार्ग चलते २ अपने मन में कहा कि "बहुत अच्छा किया जो मैं ने कुछ याचना नहीं की, निर्धन हूं तो परमात्मा का स्मरण तो करता हूं, मुझ को भक्तिभाव संरक्षणी निर्धनता ही भली।" परन्तु घर आकर यह देखते हैं कि ठाट बाट ही दूसरे हैं। इन के तृण-शाला की भूमि उच्च प्रासाद ने छीन ली है और इन की जीर्ण सामग्री का स्थान बहुमूल्य पदार्थों ने दबा लिया है। आज न तो सुदामा वह दीन सुदामा है और न इस की स्त्री वह भूख से व्याकुल दीन-स्त्री ही है। आज ये दीनबन्धु श्रीकृष्ण की कृपा से विना याचना किये हो परम ऐश्वर्य्यशाली होकर सचे द्विजराज (चन्द्र) बने अपनी स्त्री को द्विज-रानी बनी पाते हैं। प्रिय पाठकगण! हम कृष्ण अनुयायियों में कई भाई ऐसे भी हैं जो अपने मित्र को देख कर त्यौड़ी चढ़ाने लगते हैं। उनको श्रीकृष्ण के इस सुचरित को पढ़कर कुछ भी तो अपना आचार सुधारना चाहिये।

महाभारत।

अभिमन्यु के विवाह में आयेहुए श्रीकृष्ण से राजा युधिष्ठिर बोले कि "कौरवों से कलह न होकर सन्धि होजाय तो अच्छा है। इस वास्ते आप उनके पास जाइये और उनको भली भांति समझाकर उनसे सन्धि कर लीजिये।" अतएव श्रीकृष्ण जी राजा धृतराष्ट्र के नगर को गये और विदुरजी के यहां ठहर दूसरे दिवस राज-सभा में पधारे। आप ने "दुर्योधन" (मुख्य कौरव) को समझाया कि "अपने भाई और स्वर्गीय महाराज पाण्डु के पुत्र होने से राज्य के पूर्णाधिकारी ५ पाण्डवों को केवल पांच ग्राम देकर अपनी प्रभुता और यश को अटल बना लीजिये।" परन्तु उस मन्दकर्मी ने नहीं माना और कहा कि "बिना युद्ध किये, सुई के अग्रभाग जितनी भी

भूमि नहीं दूंगा।" तब तो श्रीकृष्ण निराश होकर चले आये। फिर दोनों ओर से युद्ध की तैयारी हुई। युद्धारम्भ के दिन प्रातःकाल दोनों ओर के सैनिकों ने स्नान कर, पुष्पमाला पहिन, श्वेतवस्त्र धारण कर, निज शस्त्र सुधार और अपने रथों पर ध्वजा स्थापन कर के स्वस्तिवाचनपूर्वक अग्नि में आहुतियां दीं। पाण्डुराज के पुत्रों की ओर—भीम, अर्जुन, युयुधान, विराट, महारथ—द्रुपद, राजा धृष्टकेतु, चेकितान, काशिराज, पुरुजित, कुन्तिभोज, शैव्य, युधामन्यु, उत्तमौजा, अभिमन्यु और प्रतिविंध्यादिक वीर और दुर्योधन की ओर द्रोणाचार्य्य, भीष्मपितामह, कर्ण, कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा, विकर्ण, भूरिश्रवा, और शल्यादिक युद्धवर्गी खड़े हुए। युद्ध के बाजे बजने लगे। अर्जुन मित्र के रथ हांकने का काम हमारे चरित्रनायक श्रीकृष्ण ने लिया, अतः अर्जुन ने आप से निवेदन किया कि "मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले चलिये जिस से कि मैं उन वीरों को देख सकूं कि जिन के साथ मुझ को युद्ध करना पड़ेगा।"

वैसा ही कियागया। अर्जुन ने अपने प्रतिपक्ष में पितृव्य, पितामह, आचार्य, मामा, पुत्र, पौत्र और मित्रादिक को भी देखा। इस लिये उस को युद्ध से घृणा होआई। परन्तु श्रीकृष्ण ने सत्योपदेश देकर उस को कर्त्तव्य कर्म का प्रबोध कराया। उस उपदेश का एक स्वल्प भाग यह है:—

"अर्जुन! जिन बातों का विचार कर के तुम अपनी आत्मा को पीड़ित कर रहे हो, अपने जी को इतना दुःख देरहे हो, वे ऊपर से देखने में तो ठीक मालूम होती हैं, परन्तु खूब सोच समझ कर उन का विचार करने से तुम्हे यह अवश्य मालूम होजायगा कि तुम्हारे विचार और तुम्हारी युक्तियां भ्रमपूर्ण हैं। मनुष्य का सुख दुःख एक बहुत ही छोटी बात है। इस क्षुद्र सुख-दुःख के खयाल से मनुष्य को अपना कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य न भूलना चाहिये। उस का जो कर्त्तव्य हो, उसे सुख-दुःख का कुछ भी विचार न कर के निःसङ्कोच करना चाहिये। और जो उस का कर्त्तव्य न हो अर्थात् जो बात उसे करना उचित न हो, उसे कदापि न करना चाहिये, चाहे उस के करने से कितने ही सुख की प्राप्ति उसे क्यों न होती हो। *

अनाश्रितः कर्मफलंकार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः॥

दोहा

यज्ञादिक जो करत है, फलअभिलाषा त्याग।
सो संन्यासी, योग-रत, न बिनक्रियाबिनआग॥

युद्ध में पाण्डवों का विजय और कौरवों का पराजय हुआ। परन्तु उक्त अनर्थकारक युद्ध ने इन गिने योद्धाओं के सिवा सभी बड़े २ विद्वान् धर्मात्माओं का भक्षण कर लिया। सब पाठकों को परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिये कि वे दयामय ऐसा कुयोग कभी भी किसी देश में उपस्थित न होने दें।

मद्यपाननिवारणार्थ यत्न।

"महाभारत मूल आख्यान" से ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्ण जी ने यादवों से सलाह कर के

* पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी अनुवादित म० भा० मू० आ० से लिया।

द्वारिकापुरी में मद्य बनाने का काम एक दम बन्द करवा दिया और मनादी करादी कि जो कोई इस आज्ञा को न मानेगा उसे तरह२ के कठोर दण्ड दिये जायंगे। नगरनिवासियों ने यह आज्ञा मानली और शराब बनाना छोड़ दिया।

परमपदप्राप्ति।

श्रीकृष्ण जी के अन्तकाल के विषय में वेदव्यास जी लिखते हैं कि श्रीकृष्ण जी मृत बलराम जी के शव के पास बैठे यह कह रहे थे कि "जो होना है वह जरूर ही होता है" कि उसी समय एक शिकारी वहां आया और उस ने दूर से श्रीकृष्ण को मृग समझ कर उन पर तीर छोड़ा। तीर श्रीकृष्ण के तलवे के अन्दर घुस गया। अतः शिकारी शिकार उठाने के विचारसे श्रीकृष्ण के पास आया। तब उन्हें पहिचान कर उस के होश ठिकाने नहीं रहे अर्थात् अपने महा अपराध से वह बहुत भारी लज्जित हुआ श्रीकृष्ण के चरणों में गिर पड़ा। क्षमा-मूर्ति हमारे चरित्रनायक ने क्षमा प्रदान कर के उस को शान्त किया और परम शान्ति-पूर्वक परलोक मार्ग लिया। सच है:-

स एव धन्योविपदि स्वरूपं योन मुञ्चति।
त्यजत्यर्ककरैस्तप्तं हिमं देहं न शीतताम्॥

भावार्थ यह है कि "वे ही पुरुष धन्य हैं जो मुसीबत में भी अपने धैर्य को नहीं छोड़ते, सूर्य्य के ताप से बर्फ़ अपने देह को तो छोड़ दे, परन्तु अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता।"

लावनी।

लखि हरि सूरज को उदय मोह भ्रम टारो।
भल कृष्ण चरित पढ़ि निज बरताव सुधारो॥
बलदाई दूध-मलाई माखन खाये।
रण-असुर पछाड़े मद्य मांस के धाये॥
जड़-पूजा मेटी वेद लेख दरशाये।
मुरली धुन से संगीत भेद सरसाये॥
धनि हरि हरि*से जिन नीक प्रकाश प्रचारो।
भल कृष्णचरित पढ़ि निज बरताव सुधारो॥१॥
जब क्रूर कंस अक्रूर भेजि बुलवाये।
तब समुझि मुरारि काज सिद्ध मन-भाये॥
ले गोप संग नंदलाल कंसपुर आये।
बल दरशाये पापी परलोक पठाये॥
धनि धर्म हेत पापी मामा उन मारो।
भल कृष्ण चरित पढ़ि निज बरताव सुधारो॥२॥
निज-भुज-बल कंस बली को हनो मुरारी।
पर कंस पिता को दियो राज्य वह भारी॥
गिर चरण रिझाये पिता और महतारी।
गुरु धाम विराजे कृष्ण जनेऊ धारी॥
धनि रुक्मणि की पत कृष्ण राखने हारो।
भल कृष्णचरित पढ़िनिज बरताव सुधारो॥३॥
जिन दीन सुदामा से अनुराग दिखाया।
निज कर से धोये चरण सुकण्ठ लगाया॥
जिन गीता गाकर वह उपदेश सुनाया।
जो वेद प्रेम का कारण जग मन भाया॥
"कवि किङ्कर"बनिये हरि अनुयायी प्यारो!
भल कृष्ण कथा पढ़िनिज बरताव सुधारो॥४॥

शमित्योम्।

---

* हरि नाम सूर्य्य का भी है। देखो अमरकोष नानावर्ग श्लोक १७४

उपयोगी पुस्तकों की सूची।

तुलसीकृत रामायण—क्षेपक रहित, रंगीन चित्र, ठप्पेदार सुनहरी जिल्द सहित १।)
स्त्रीशिक्षादर्पण—कन्याओं को अत्युपयोगी ... ...
संगीत नगर कीर्तन २ रा भाग—३१ भजनों का संग्रह ...
गाने की चन्द चीजें दोनों भाग ... ...
भाषा पिंगल—छन्द बनाने की विधि ... ...
दोहासंग्रह—अनेक प्राचीन और नवीन कवियों की दोहावली
भजन बागीचा—प्रार्थना और शिक्षा के भजन ... ...
भजन वाटिका—"स्वतन्त्र" कवि के सरस भजन ... ...
गुरुमन्त्रव्याख्या—गायत्री का अर्थ लावनी में ... ...
भक्तामनो-रञ्जन—(भजन) ... ...
मोहनीमन्त्र पहला भाग—दोहों की माला ... ...
ऋषिचरित्र—एक महात्मा का जीवनचरित्र ... ...
चतड़ा चौथ चातुरी—चतड़ों के योग्य लावनिएं ... ...
उर्दू शायरी—फारसी अक्षरों में नामी शायरों की गजलें ...

पताः—मूलचंद्र गुप्त
"किंकर पुस्तकालय"
छावनी—नीमच

धारीवाल की खालिस ऊनी चादरें:—३) ३॥) ४॥)

पताः—मांगीलाल गुप्त—छा० नीमच।

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण क्रमांक 1772
दयानन्द महिला ... कुरुक्षेत्र